श्रीसिद्धसेनसूरि रचित
'सिद्धमातृका' प्रकरणनी भूमिका

सं. विजयशीलचन्द्रसूरि
मुनि धुरन्धरविजयजी

आचार्य श्रीसिद्धसेनसूरिजी कृत सिद्धमातृकाधर्मप्रकरणनी मूल कृति अहीं प्रस्तुत छे. आ कृति अर्थगम्भीर छतां प्रसन्न छे.

'**अ**' थी प्रारंभीने '**क्ष**' सुधीना वर्णोनी माळाने प्राचीन महापुरुषो सिद्धमातृका कहे छे. जगतनो समग्र व्यवहार भाषाथी ज चाले छे. अने ते भाषानी जननी आ सिद्धमातृका छे. सिद्धमातृका एटले अविनाशी एवी जगज्जननी अक्षरमातृका, जे क्यारे पण नाश पामती नथी.

आ सिद्धमातृकाना प्रारंभमां भले मींडी, ई॥ **ॐ नमः सिद्धं**-अने अंतमां **मङ्गलं महाश्रीः** । आवतुं. ई॥ आ आकृतिने प्राचीन कालथी '**भले मिंडी**' कहे छे. एने कुण्डलिनी रूपे आ रचनामां अने अन्यत्र पण आ प्रकारनी रचनामां वर्णवी छे. आ आकृति माटे '**भले**' शब्द ज केम वपरायो ते आम्नायना अभावना कारणे समजातुं नथी. पण अत्यन्त प्राचीनकाळथी आ रीते ज ओळखाय छे. आ शब्द परम मांगलिक छे. माटे वार्तालापना व्यवहारमां स्वीकारना अर्थमां आपणे खूब ज व्यापकताथी '**भले**' शब्दनो उपयोग करीए छीए. **सिद्धं** शब्दनो उपयोग '**क्यां**' ने बदले '**शीद**' आ अपभ्रष्ट रूपे करीए छीए.

जैन तान्त्रिकोना मते **अर्हं** ए शब्दब्रह्म छे. तेमांथी कुण्डलिनी शक्तिनुं जागरण, तेमांथी अनादि संसिद्ध वर्णमातृकानुं प्रागट्य - आ वैश्विक क्रम छे. आ रचनामां पूज्य आचार्यश्री 'अर्हं' 'भले मिंडी' 'ॐ नमः सिद्धं' पछी वर्णमाला - आ क्रमथी ज रहस्य उपर प्रकाश पाथरे छे.

आ रचनाना १ थी ६२ सुधीना श्लोको अत्यन्त अर्थगम्भीर रहस्योथी भरेला छे. जेमां ग्रन्थकार '**अर्हं**' '**भले मिंडी**' अने '**ॐ नमः सिद्धं**'नुं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अद्भुत स्वरूप वर्णवे छे. जेमां अध्यात्मरसिकोने खूब ज रस पडे तेवुं छे. पछीना श्लोकोमां **अ** थी लईने **ह** सुधीना वर्णो उपर चिन्तन छे.

अ थी लईने क्ष सुधीना वर्णोना माध्यमथी थतां जापने तान्त्रिको अक्षमाळा कहे छे. आ रचनामां '**ॐ नमः सिद्धं**' थी क्ष सुधीना '५६' वर्णोने ५६ दिक्कुमारिका साथे सरखाव्या छे. (श्लोक ४५). अरिहन्त परमात्मा शब्द ब्रह्मस्वरूप छे. एमनुं सर्वप्रथम सूतिकाकर्म ५६ दिक्कुमारी ज करे छे. इन्द्रनो अधिकार पण पछीना क्रमे छे. आ घटना कोक वैश्विक रहस्य तरफ आंगळी चींधे छे. सिद्धमातृकाने विश्वसंरचना साथे मूळभूत गूढ सम्बन्ध छे, ए वात आ रचना उपरथी समजाय छे. बाकी आनुं हार्द तो कोक गुरुगमप्राप्त साधक ज समजावी शके.

'महावीरनुं निशाळगरणुं' नामथी मळती प्राचीन हस्तप्रतोमां 'भले मिंडी'थी लइने सम्पूर्ण वर्णमातृकाना आध्यात्मिक अर्थो प्रतीकोथी प्रगट करवामां आव्या छे. आजथी ६०/७० वर्ष पहेलां राजस्थानी पोशाळोमां आ रीते ज बाराखडी (वर्णमाळा) भणाववामां आवती हती, एम जूना माणसो कहे छे.

एवी अनुश्रुति छे के प्रभु महावीर निशाळे बेठा त्यारे इन्द्रे जे प्रश्नो कर्या तेना जे उत्तर ते ज आ निशाळगरणुं छे. तेमां प्रभुए वर्णमातृकानां रहस्यो प्रगट कर्यां छे.

आ सिद्धमातृका प्रकरण अने निशाळगरणुं बंनेमां प्रतिपादननुं जबरदस्त साम्य छे. आ सिवाय पण व्रज अने जूनी गुजरातीमां वर्णमाळाना '५२' अक्षरोना आधारे घणी बधी बावनी लखाणी छे - किशन बावनी, ब्रह्म बावनी, अक्षर बावनी आदि. संस्कृत अने देश्यभाषामां आवी वर्णमातृका अंगेनी घणी बधी गूढ रचनाओ मळे छे. पूज्य उपाध्याय श्रीमेघविजयजी म., जे गूढतत्त्वोना वेत्ता हता, एमणे पण **मातृकाप्रसाद** नामनो विराट ग्रन्थ रच्यो छे जे ५० पत्र प्रमाण छे. अमुद्रित अने अप्राप्य छे. एनी एक ज नकल में एक स्थाने जोई छे. पण मालिक ए प्रतने दबावीने बेठो छे.

पू. सिद्धसेनसूरि रचित बीजी पण बे रचना मळे छे. एक छे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमस्कार माहात्म्य अने एक छे शक्रस्तव. आ त्रणे रचनाओमां भाषासाम्य, पदार्थ-विवेचनासाम्य आंखे उडीने वळगे एवुं छे. आ बंने रचना स्वतन्त्र तथा नमस्कार स्वाध्याय भाग-२ संस्कृत विभागमां मुद्रित छे. शक्रस्तवनुं 'जिनो दाता जिनो भोक्ता' नमस्कार माहात्म्यना प्रारम्भमां ज छे. सिद्धसेनाधिनाथ' शब्दनो प्रयोग शक्रस्तवनी जेम नमस्कार महात्म्यना प्रारम्भमां ज छे. सिद्धमातृकामां श्लोक ५१ थी ५५ ने शक्रस्तवना आलापक साथे सरखावी शकाय. आ त्रणे रचनाना कर्ता सिद्धसेन एक ज छे, ए वात ऊंडाणथी त्रणे रचनानो अभ्यास करवाथी दीवा जेवुं स्पष्ट समजाशे. नमस्कार महात्म्यना अन्तिम श्लोकोमां आ कर्ता, एनी रचना क्यां थई तेनो स्पष्ट उल्लेख करे छे.

"सिद्धसेनसरस्वत्या सरस्वत्यापगातटे ।
श्रीसिद्धचक्रमाहात्म्यं गीतं श्रीसिद्धपत्तने ॥"

नमस्कार माहात्म्यनी रचना सरस्वतीनदीना किनारे सिद्धपत्तन एटले सिद्धपुर पाटणमां थई छे. बस आ सिवाय स्थळ-काळनो कोई उल्लेख आ रचनामां नथी, के नथी गुरुपरंपरानो उल्लेख. पण आ आचार्य सिद्धसेन नमस्कार मन्त्रना महान् साधक छे. मन्त्रमर्मज्ञ छे, ए वात निःशंक छे.

हवे आ रचनाकार सिद्धसेन दिवाकर छे, के सिद्धर्षि छे, के प्रवचन सारोद्धार टीकाना कर्ता आचार्य सिद्धसेन छे, के तत्त्वार्थ टीकाना कर्ता सिद्धसेन छे ए प्रश्न छे. के आ बधाथी अलग कोई अज्ञात साधक आचार्य सिद्धसेन छे जे १३मी सदीमां होय ?

मने पोताने तो आ त्रणे रचना प्रायः उपमितिभवप्रपंचाना कर्ता सिद्धर्षिनी होय तेम लागे छे. उपमितिना श्लोको साथे आ श्लोकोने सरखावी शकाय. श्रीचन्द्र केवलीचरित्र पण एज सिद्धर्षिनी रचना गणाय छे.

'अर्हं-अक्षरतत्त्वस्तव' धर्मोपदेशमालाप्रकरण (जयसिंहसूरिकृत, रचना संवत् ९१५ सिंघी जैन ग्रन्थमाला अने नमस्कार स्वाध्याय भा.-२ पत्र २१ थी २४) एनी साथे पण आ मातृका प्रकरणनी तुलना करी शकाय. भाषाकीय दृष्टिए आ ग्रन्थ ९ थी १४मा सैका वच्चेनो मने लागे छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीरत्नचन्द्रकृत मातृकाप्रकरण पण मळे छे जेनी प्रति आ. यशोदेवसूरि म. ना संग्रहमां छे. अमुद्रित छे.

- मुनि धुरन्धरविजय
समृद्धि एपार्ट. नजीक
'अरिहंत' डीसा- ३८५५४५

'मातृका, वर्णमाला, कक्को, बाराखडी' – आने विषय बनावीने थती रचनाओनुं पगेरुं बौद्धग्रन्थ 'ललितविस्तर', मतङ्गमुनिकृत संगीतग्रन्थ 'बृहद्देशी' तथा सोमेश्वरकृत 'मानसोल्लास' सुधी जाय छे. अद्यावधि प्राप्य रचनाओनी संख्या ३२ आसपास छे, अने ते संस्कृतेतर एटले के अपभ्रंश, गुजराती, हिन्दी वगेरे भाषाओमां छे. आ विषये विगते जाणकारी मेळववा इच्छनारे डो. हरिवल्लभ भायाणी द्वारा सम्पादित, महाचन्द्रमुनिकृत 'बारहक्खर कक्क' (अमदावाद, पार्श्व फाउन्डेशन, ई. १९९७)नी प्रस्तावना वांचवी जोईए.

मातृकाना प्रथम अक्षरने लईने थयेल 'कक्को' प्रकारनी रचना संस्कृतमां उपलब्ध थई होय तेवो आ प्रथम दाखलो छे. अन्य आवी संस्कृत रचना विषे हजी जाणवामां आव्युं नथी, ए दृष्टिए प्रस्तुत कृति तथा सम्पादन नोंधपात्र छे.

मातृकाप्रधान जे रचनाओ अत्यारे उपलब्ध के नोंधायेल छे, तेमां १३मा शतकथी पहेलांनी कोई रचना मळी नथी. एवी संभावना विचारी शकाय के १२ मा सैका बाद आ रचनाप्रकार प्रत्ये रचनाकारोनुं ध्यान आकर्षायुं होय, अने त्यारथी आवी रचनाओ आरंभाई होय. आ अटकळना सन्दर्भमां विचार करतां एम लागे छे के 'सिद्धमातृका'ना कर्ता आ. सिद्धसेनसूरि पण १३मा शतकना ज, अने ते पण प्रवचनसारोद्धार-टीका (सं. १२४८) ना प्रणेता ज होई शके. मुनि श्रीधुरन्धरविजयजीनी ए अटकळ के 'शक्रस्तव, नमस्कार माहात्म्य, सिद्धमातृका'– आ त्रणेना कर्ता एक ज सिद्धसेनसूरि छे, ते साथे संमत थवामां लेश पण बाध नथी जणातो. श्री सिद्धर्षि (उपमिति.कार) आना कर्ता होवानुं असंभव लागे छे. 'सिद्धपुरपत्तन'नो 'नमस्कार माहात्म्य'गत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्देश, नमस्कारमाहात्म्य अने सिद्धमातृकानी रचनाओमां जडतुं आन्तरिक साम्य – आ बधां परथी आ बधी रचनाओ १३मा शतकना सिद्धसेनाचार्यनी होवानुं वधु सुसंगत जणाय छे. अने ए वात ने प्रमाणभूत समजीए तो 'शक्रस्तव' तथा 'नमस्कारमाहात्म्य'नुं कर्तृत्व सिद्धसेनदिवाकरसूरिना नामनी साथे जोडातुं आव्युं छे, ते धारणा बदली नाखवानी रहे छे. 'सिद्धसेन' नाम आवे एटले तेनो सम्बन्ध सिद्धसेन दिवाकरजी जोडे जोडवानी रूढ प्रथा छे. तेमांये 'शक्रस्तव' माटे तो, प्राकृत सूत्रोने संस्कृतमां बदलवानी दिवाकरजी साथे जोडायेली कथाना सन्दर्भमां, अत्यन्त सहेलाईथी गळे ऊतरी जाय तेवी वात गणाय. परन्तु, कोई वातने रूढ गतानुगतिकताए मानवाने बदले प्रमाणो अने ते-आधारित ऊहापोह थकी ज मूलववी तथा विचारवी वधु उचित छे.

'जैन संस्कृत साहित्यनो इतिहास'मां ही.र. कापडियाए 'सिद्धमातृका' विषे नोंध आपतां तेना कर्ता आ. सिद्धसेन विषे (?१५मो शतक) आम नोंध आपी छे, जे निराधार जणाय छे. १५मा शतकमां कोई सिद्धसेनाचार्य थया होय तो ते विषे जाणवा मळ्युं नथी, अने श्रीकापडिया सामे पण तेवी कोई जाणकारी होय तेवो संकेत सुद्धां तेमणे आप्यो नथी.

सिद्धमातृका प्रकरणना पद्य १-१०मां संभवतः 'अर्हं'नो महिमा वर्णवायो छे. ११-१५मां 'भले' तरीके ओळखावाती आकृतिनुं वर्णन छे. १६-२१मां 'मींडी' एटले के शून्य-०नुं स्वरूपवर्णन थयुं छे. २२-४४ मां अनेक विकल्पो थकी शून्य पछी मूकाती बे रेखा (ऊभी लीटी) – ॥ नुं विशद वर्णन छे. आ रेखावर्णनने 'नमस्कारमाहात्म्य' ना 'नमो सिद्धाणं' पदवर्णनप्रकाशगत 'द्धा' अक्षरमांना 'द्-ध्'ना संयोगनुं वर्णन करतां पद्यो साथे सरखावीए तो आ बन्ने कृतिओ एककर्तृक होवानी सहज प्रतीति थाय.

४५-५०मां प्रणवमन्त्र ॐ नुं, ५१-५४मां 'नमः' के 'ॐनमः' नुं, ५५मां 'नमः' नुं, ५६मां 'सिद्धम्'नुं स्वरूपालेखन छे. ५७-५८मां नाभिमां षोडशदल कमलमां, हृदयदेशे चतुर्विंशतिदल कमलमां अने मुखमां अष्टदल कमलमां, समग्र वर्णमाला-मातृकानुं ध्यान धरनार मनुष्य सर्वज्ञतुल्य थाय छे, ते वात निर्देशवामां आवी छे. 'मातृकाध्यान' ए ध्याननो एक मान्य अने सिद्ध प्रकार छे. ५९-६२मां सिद्ध-मातृकानुं माहात्म्यवर्णन थयुं छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पछी आरंभाय छे कक्काना अक्षरोना क्रमे श्लोकरचना. अ थी ह सुधीना (अनुस्वार-विसर्ग समेत) १६ स्वरो तथा क वगेरे ३३ व्यञ्जनो माटे ६३-१२५ सुधीना श्लोको छे, जे औपदेशिक अने बोधकतानी दृष्टिए बहु मजाना छे. छेवटे १२९ मा पद्यमां कक्काशिक्षणमां शीखवातुं अन्तिम वाक्य 'मङ्गलं महाश्रीः' छे, अने साथे ग्रन्थकारनो नामनिर्देश पण छे.

आ रचनानी हाथपोथी अमदावादना संवेगी उपाश्रयना ग्रन्थभण्डारनी छे, जेनी जेरोक्स नकल मुनि श्रीधुरन्धरविजयजीए मेळवी हती, तेना आधारे आ सम्पादन करेल छे. प्रत ८ पत्रनी छे, अने शुद्धप्राय छे.

श्री अक्षयचन्द्रकृत मातृकाप्रकरण अनुसन्धान-१२मां मुद्रण पाम्युं छे, तेनुं स्मरण पण आ क्षणे थाय छे.

-**शी.** (मद्रास)

—x—

सिद्धमातृकाप्रकरणम् ॥

अर्हं ॥ अर्हं विभुर्विश्वशिरोवतंस - प्रायान्तरज्ज्योतिरनाद्यनन्तः ।
सिद्धाक्षरब्रह्मवितानगर्भो विमुक्तचित्तैरपि चिन्तनीयः ॥१॥

अर्हं समग्रवर्णानां धुरि चान्ते च लीनवान् ।
ज्ञातो नतैः परब्रह्मनिष्णातैर्नरशेखरः ॥२॥

अर्हं मध्यस्थतालीनसकलाक्षरनायकः ।
तमोघ्नैकशिरोरत्न-माम्नातो बालकैरपि ॥३॥

अर्हं विधाता परमः पुमानहं महेश्वरोऽहं गुणसम्पदा सदा ।
त्रैगुण्यमुक्तः क्रमतो जिनोऽप्यहं चराचरेऽहं खलु नामधामभिः ॥४॥

ह्नमित्येकं ध्येयमध्यात्मिनां यो मायाबीजे यत्प्रतिच्छायमम्भः ।
सोऽहं हंसः सात्त्विका लिप्सवो मे न ह्रीमन्तः श्वा(स्वा)त्महानिः क्व तेषाम् ?॥५॥

सोऽहं हंसः कश्चिदाकाशदेवो मायास्थल्यां यन्मरीचिप्रपञ्चः ।
अग्रे तन्वन्नुत्तरङ्गं भवाब्धिं स्वान्तभ्रान्तिं हन्त दत्ते पशूनाम् ॥६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोऽहं हंसः सर्वलोकैकचक्षुः पङ्कातङ्कस्याऽन्तको यत्प्रकाशः ।
सच्चक्राणां ध्वस्तदोषान्धकारः कान्तासङ्गं नित्यरङ्गं चकार ॥७॥

नैकात्मतैकात्म्यमनात्मतेतिधीस्त्रिमार्गगा मद्व्यवहारशैलतः ।
निर्याति विश्वत्रयवन्द्यवैभवा सन्निश्चयाब्धौ व्रजति स्वयं लयम् ॥८॥

नैकात्मतां केवलितामनीशतां प्रकाशमानेन परां चराचरे ।
स्याद्वादिना हन्त मयैव केनचित्, कृतः प्रसादो निखिलासु दृष्टिसु ॥९॥

यावान् भावो यो भवार्थं स तावान्, सर्वोऽपि स्यान्मुक्तये मत्प्रसादः ।
यन्मेघाम्भः क्षीयते धन्वभूमौ मुक्तीभूतं पश्य तच्छुक्तिलाभात् ॥१०॥

अर्हद्विष्णुशिवस्वयम्भुसुगतज्योतिःश्व(स्व)भावाम्बर-
ब्रह्मानन्दचिदात्मनः सदसदूद्ध्वर्वाधःस्थदूर्वाङ्कुरैः ।
द्वैताद्वैतिभिरुद्गतैर्धृतनवाकाराङ्गजन्मान्तरं
सङ्ख्याबीजकमादिमं भगवतीं शक्तिं **भली**ति स्तुमः ॥११॥

द्वयात्मभावाङ्कुरनिर्मिताकृतेर्जीवान् दिशन्ती नवधा भवस्थितान् ।
जनि-क्षय-स्थेमगुणत्रयीमयी सा शक्तिरेका परमात्मनोऽर्हतः ॥१२॥

भलते जनाय नवतत्त्वसुधां, भलतेऽस्तितां नवविधाङ्गभृताम् ।
नवपापकारणगणं भलते, तदसौ **भली**ति भणिता गुणिभिः ॥१३॥

फणीन्द्रबीजाङ्कुरविद्युदाकृतेर्या भूर्भुवः स्वर्दधतीव लक्ष्यते ।
शक्तिः परा कुण्डलिनी **भलीति** सा, लेलिख्यतेऽभैर्धुरि शब्दब्रह्मणः ॥१४॥

भले भले कुण्डलिनि ! श्रियं तवा-द्भुतां महाभूतगुणात्मिकां तदा ।
जाड्यान्धकारं भलसे यदा तदा संवित्तिवित्तं भलसे सनातनम् ॥१५॥

लोकेशकेशवशिवेश्वरशक्तिबुद्धीलक्ष्म्या(क्ष्म्य)र्हदात्मपरब्रह्मपदानि यस्य ।
तज्ज्ञा जगुः स्तुतिवचांसि तदेतदीडे, शून्यं गुणत्रयविकारनिकारशून्यम् ॥१६॥

अन्तरङ्गबहिरङ्गतरङ्गैः शून्यतामुपगताय नितान्तम् ।
शुद्धशाश्वतशिवाय नमोऽस्तु क्षीणपुण्यवृजिनाय जिनाय ॥१७॥

स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णा-कृति- पू(पौ)र्वापर्य्य-लिङ्ग-समयाद्यैः ।
नामस्थान-ध्यान-ध्येयैर्यः सर्वथा मुक्तः ॥१८॥

आद्यन्तशून्यो जगदेकजीवनो य आदिसङ्ख्यः सकलोऽविशत्कलाः ।
नवाऽष्ट सप्ताऽथ षडेव पञ्च वा चतुस्त्रिकद्वयेकमितास्ततः परम् ॥१९॥

शान्तः कृतान्तस्त्वमहन्तयोज्झितः
शून्यात्मतां काञ्चन यो दधौ पराम् ।
अहं स रूढ्या परमेश्वरो जने
मध्यस्थतालीनसमग्रवर्णराट् ॥२०॥

द्वन्द्वैर्भृशं शून्यवदेव शून्यः, शून्योऽणुमात्रं न निरञ्जनानाम् ।
शून्यैकभावे फलशून्यबुद्धे ! परं लयं संश्रित ऐक्यसिद्ध्यै ॥२१॥

द्वयो रेखे नित्ये महिमविषये शक्तिशिवयो-
र्द्वयो रेखे तथ्ये भुवनजनने पुण्यतमसोः ।
उभे रेखाप्राप्ते शिववितरणे ज्ञानतपसी
उभौ रागद्वेषौ किल कलितरेखौ भवपथे ॥२२॥

उभौ रेखायोग्यौ श्रितसहजवैराश्रवभरौ
जने कर्मात्मानौ कलितविधिदैवादिबिरुदौ ।
उभावेव ह्येतद्विरहकरणोपायनिपुणौ
जिनस्तावद् रेखां भजति समयोऽन्यस्तदुदितः ॥२३॥

यदि वा-

द्वन्द्वेषु च्छायातप-सुखदुःख-दिनक्षि(क्ष)पा-शिवभवेषु ।
अरिमित्र-पुण्यपाप-प्रमोदशुगु-त्पत्तिमरणेषु ॥२४॥

तेजस्तम-उदयक्षय-जागरनिद्रा-परात्ममुख्येषु ।
यच्चित्तं समरेखं तेषा रेखे इहाऽमुत्र ॥२५॥ युग्मम् ॥

अथवा-

जगदेकशरण्यस्य रेखे स्याद्वादभूभुजः ।
निश्चय-व्यवहाराख्ये भुजे इव विराजतः ॥२६॥

नित्यानित्यात्मकान् भावान् स्थापयन्त्यौ चराचरे ।
अनेकान्तगृहद्वारि रेखे जैत्रध्वजोपमे ॥२७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दब्रह्मशरीरेऽनेकान्तात्माऽस्ति साक्षिणी रूपे ।
हिमकरदिनकरनाड्या-विव रेखे निर्भरे स्फुरतः ॥२८॥

युगादिदेवस्य शिवस्य नन्दिनी ब्राह्मीति विश्वप्रथिता सरस्वती ।
सौन्दर्यसीमा कमला च सुन्दरीत्यवाप रेखामिषतोऽर्हणामिह ॥२९॥

नाभिप्रिया कुण्डलिनी भवात् शिवात् जाते सुरेखे सुसमे सुसङ्गते ।
एकान्तमानोद्धतबुद्धये स्थिरास्थिरप्रमाणप्रगुणे इमे स्तुमः ॥३०॥

संसारे श्री-सरस्वत्यो रेखा प्राप्ता पवित्रिता ।
यत्त्यक्तमङ्गिनं सर्व-तीर्थानांसि पुनन्ति न ॥३१॥

द्वाविमौ पुरुषौ लोके लब्धरेखौ मतौ मम ।
अर्थितो यः करोत्येव यश्च नार्थयते परम् ॥३२॥

गङ्गासिन्धू च पावित्र्यौ द्वयो रेखे सतां मते ।
कार्यं विनोपकारी यो यश्च नापह्नुते कृतम् ॥३३॥

स्वर्गापवर्गयोर्मार्गौ द्वावेव प्राञ्जलौ स्मृतौ ।
श्राद्धधर्म-यतिधर्मौ प्राप्तरेखौ चराचरे ॥३४॥

अवश्यं नश्वरं सर्वं देहगेहधनादिकम् ।
ध्रुवत्वे धर्म-यशसोरेव रेखे निरीक्षिते ॥३५॥

स्वात्मा देवः कर्म दैवं रेखे सूनृतवर्त्मनः ।
स्वातन्त्र्यं सर्वसन्तोषो रेखे ऐश्वर्यसम्पदः ॥३६॥

मन्ये सुखे च दुःखे च परां रेखां श्रिता बु(ब)भौ ।
स्निग्धैर्मुग्धैर्विदग्धैर्यः संयोगो विरहश्च यः ॥३७॥

पीयूष-कालकूटे च द्वे रेखे मुनिभिर्मते ।
एका सद्दर्शनप्राप्तिः परा तदवधीरणा ॥३८॥

द्वौ रसेन्द्रौ द्वयोरेव रेखाप्राप्तौ बभूवतुः ।
शृङ्गारो गिरिजाकान्ते शान्तः पारा(र)गते विभौ ॥३९॥

धर्मशास्त्रोपनिषदा-मिदं रेखाद्वयं ध्रुवम् ।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥४०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रेखाप्राप्तावुभावेव मन्ये सुखिषु मानिषु ।
सम्पन्नाखिलकामो वा यो वाऽस्ताखिलकामनः ॥४१॥
एकोऽर्हन् बोधिदो देवः परः स्वात्मा गुरूदितः ।
इदं रेखाद्वयं स्थास्नुः सिद्धादेशश्चराचरे ॥४२॥

अलं वा विस्तरेण । प्रस्तुतमभिधीयते--

पुरस्कृतनिरञ्जनाऽहमिति रूढितो याऽर्चिता
प्रमाणयुगमग्रतो जगति जातरेखं श्रिता ।
धृतान्तरखिलाक्षरा जयति कापि शक्ति परा
गुणत्रितययोगिनीं सुगुणलक्ष(क्षि)तामक्षताम् ॥४३॥
हेतुः शम्भोः शक्तिः शम्भुर्बिन्दुः पुरःस्थिते रेखे ।
प्रत्यक्षाऽ[प्र]त्यक्षपदार्थबोधनिपुणे प्रमाणे द्वे ॥४४॥
ॐ मादिर्लक्षान्ता वर्णाली दिक्कुमारिकासङ्घः ।
इति **सिद्धमातृकायै** नमो नमो विश्ववन्द्यायै ॥४५॥
यो जन्मबीजं शिवशक्तिशब्द-ब्रह्मात्मचैतन्यजगद्गुणानाम् ।
षड्दर्शनान्तर्लयतारकाभां तां **मातृकां** त्रैधमहं स्मरामि ॥४६॥
अचलाऽनलाऽनिलोदक-खमूर्त्तिरधऊर्द्ध्वमध्यलोकमयः ।
अर्हन्मुखमुख्याक्षर-सिद्धः **प्रणवो**ऽवतु जगन्ति ॥४७॥

अथवा-अधमोत्तमध्यमादिमा-क्षरतः सन्धिप्रयोगसंहतात् ।
उदितं **प्रणवं** जगन्मयं जगदुर्जागरयोगसम्पदः[१] ॥४८॥
आक्रम्य कर्माण्यधमोत्तमानि केनापि माध्यस्थ्यमहो महिम्ना ।
जज्ञे महानन्दमयो मुनिर्यो नमो नमोऽस्तु **प्रणवाय** तस्मै ॥४९॥
मध्यस्थतां मध्यमलोकपालः, पापेषु पुण्येषु परां प्रपद्य ।
यथावनन्तामधऊर्द्ध्वलोका-वतंसलक्ष्मीं जिन एक एव ॥५०॥

अतो ब्रूमहे-

ॐ नमः सकलपारगामिने सिद्धपञ्चपरमेष्ठिरूपिणे ।
अत्रिलिङ्गमहसे परात्मने ज्ञानदर्शनचरित्रबीजिने ॥५१॥

१. मुनयः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ नमः परमवेधसेऽर्हते भास्वते पुरहृतेऽमृतद्युते ।
अच्युताय सुगताय तायिने भूर्भुवःस्वरपवर्गदायिने ॥५२॥

ॐ नमस्त्रिपुरुषार्चितार्चिषे सर्वदोषरहितात्मनेऽर्हते ।
व्यापकत्रिगुणतीतमूर्त्तये लोका(क)पौरुषशिरोमणिश्रिये ॥५३॥

ॐ नमो विरजसे स्वयम्भुवे विष्णवे दलितदम्भकेलये ।
शम्भवेऽस्ततमसे भवस्थितिध्वंसकारणगुणात्मनेऽर्हते ॥५४॥

नमोऽस्तु देवाय चिदात्मनेऽर्हते, नमोऽस्तु शीलाङ्गधराय साधवे ।
नमोऽस्तु धर्माय दयास्वरूपिणे, नमोऽस्तु रत्नत्रयभक्तिशालिने ॥५५॥

सिद्धं त्रिलोकी सुखवैभवं ध्रुवं, सिद्धं प्रसिद्धं तदहो ! गुणाष्टकम् ।
सिद्धं परब्रह्म तदक्षरं सता-मनादिसिद्धं श्रयतामिहाऽक्षरम् ॥५६॥

तथाहि-

षोडशच्छदजुषि स्वरमालां, नाभिकन्दकमले विचरन्तीम् ।
चिन्तयेदथ सकर्णिकपद्मे, द्वादशद्वयदले हृदि वर्णान् ॥५७॥

अष्टपत्रयुजि वक्त्रसरोजे, ... ।
संस्मरन्निति जिताक्षकषायो **मातृकां** सकलविन्मनुजः स्यात् ॥५८॥ युग्मम्॥

सुधियां चिन्मयधाम्नो जननात् परिपालनात् विशोधनतः ।
श्रीसिद्धमातृकैवं कमलश्रीर्जयति मातेव ॥५९॥

अनादिनिधनं वेद-सिद्धान्तादि परम्परम् ।
पौरुषेयं परं ज्योति-**र्मातृका**ख्यमुपास्महे ॥६०॥

पुमर्थशास्त्राण्यखिलानि येभ्यो, बीजोत्करेभ्योऽङ्कुरवद् विकाशम् ।
गृह्णन्ति सदबुद्धिसुधोक्षितानि, तेभ्योऽक्षरेभ्यः प्रणतोऽस्मि बाढम् ॥६१॥

सिद्धान्त-तर्क-श्रुत-शब्द-विद्या-वंशादिकन्दप्रतिमप्रतिष्ठान् ।
अनादिसिद्धान् सुमनःप्रबन्धै-र्वर्णान् महिष्यामि जगत्प्रसिद्धान् ॥६२॥

तद् यथा-

अर्हन्तमेकं शरणं श्रयध्वं, धर्मानहिंसाप्रभृतीन् कुरुध्वम् ।
अनाश्रवत्वाय सदा यतध्वं विमृष्टसम्यक्सुलसावदाताः ॥६३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अघं न लोकोत्तमचिन्तकानां, पुण्यं न मिथ्यात्विसमागतानाम् ।
दुःखं न सन्तोषवशंवदानां, सुखं न सारम्भपरिग्रहाणाम् ॥६४॥

अर्हन्तमन्तः स्मरतां न पापं, मिथ्यात्विभिः सङ्गकृतां न पुण्यम् ।
सन्तोषसाम्राज्यजुषां न दुःखं, परिग्रहारम्भपुषां न सौख्यम् ॥६५॥

आचारमाजीवितमाश्रिताना-माशाविकाशै रहिताशयानाम् ।
आज्ञामिहाऽऽराध्यति कोऽपि धन्यः, प्रदेशिवत् केशिमुनीश्वराणाम् ॥६६॥

इष्टेष्विहामुत्र सुदुस्त्यजेषु, श्रीराम-सीतावदसङ्गतानाम् ।
इच्छानिवृत्त्या कपिलोपमानं, गृह्णामि दुःखं ऋषिसत्तमानाम् ॥६७॥

ईर्ष्यादिदोषत्यज ईश्वरत्वेऽपीहादिहीनाः सुखसङ्गमेऽपि ।
पुण्यैः सताभीक्षिततत्त्वमार्गा भवन्ति वीरप्रभुवज्रतुल्याः ॥६८॥

उभौ मनुष्यौ सुमनःपतीनां गोविन्दवद् गौतमवत् प्रशस्यौ ।
एको वदान्यो जगदीश्वरोऽपि, ज्ञाताखिलार्थोऽपि परो विनीतः ॥६९॥

उन्निद्रता शूरकराग्रजाग्रत्सरोरुहस्येव विकाशभाजः ।
कस्यापि राजत्यभयस्वभावं प्रपद्यमानस्य मनःप्रसत्त्यै ॥७०॥

ऊर्द्ध्वोर्द्ध्ववीक्षाप्रयताः सचेतना, ऊनं प्रपश्यन्ति न के स्वमृद्धिभिः ।
लोकोत्तरैः सच्चरितैः परं गुरुं कर्तुं क्षमाः केऽपि दशार्णभद्रवत् ॥७१॥

ऋद्धिं प्रकृष्टमपि नष्टदृष्टां क्षणेन सन्ध्यामिव येऽवबुध्य ।
सनत्कुमारस्थितिमाजुषन्ते, तेभ्यो भवेयं बलिरीश्वरेभ्यः ॥७२॥

ऋषितां दधते न के बुधा ऋषिदत्ताचरितं निशम्य तत् ।
ऋजुता-मृदुता-क्षमा-ऽवनी-[१]ऋतुराजावतरप्रभाभरम् ॥७३॥

ॠकारवत् क्वापि पदे प्रतिष्ठा सर्वाङ्गवक्रस्य निशम्यते न ।
ऋजोः प्रसन्नो[२]नुजवत्तु जन्तोः, पदे निवासः परमो(मे)ऽपि दृष्टः ॥७४॥

ऌवर्णवक्रक्षणि[३]कातरङ्गोन्मेषात्तमिश्रा सुपदार्थदृष्टौ ।
यादृक् सुखं तादृगहो सुखादौ, सौमित्रिवत् केचन चिन्तयन्ति ॥७५॥

---

१. वसन्तः, तस्य अवतरः ॥ ३. विद्युत् ॥
२. वल्कलचीरिवत् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लृकारवत् प्राञ्जलतोज्झितस्य दण्डादृतेऽन्यत्र न हि प्रसङ्गः ।
किं नाम नाभूत् पुरतोऽर्हतोऽपि, गोशालकस्याऽनर्वधिर्वधार्थः ॥७६॥

एकत्वतत्त्वामृतसिन्धुमग्नाः, सनातने ब्रह्मपथे विलग्नाः ।
प्रत्येकबुद्धा नमिराजमुख्या बाढं मदीये हृदये ध्वनन्ति ॥७७॥

ऐश्वर्यसत्सङ्गमगेहदेह-प्राणप्रियास्नेहधनादि सर्वम् ।
तरङ्गभङ्गप्रतिमं विचिन्त्य स्वालोचितं श्रीकरकण्डुपादैः ॥७८॥

ओष्ठाविव द्वौ मिलितौ तपः-शमौ, सतां सदा मुख्यतयाऽपवर्गदौ ।
परस्परप्रीतिपरौ श्रुतौ नवा-ऽनन्ताच्युतौ किं परलोकसाधकौ ? ॥७९॥

औत्सुका(क्य)मग्र्यं गणयन्ति सात्त्विका, दानोपकारव्रतधर्मनिर्मितौ ।
अहक्षये हन्त विलम्बितैः पथि, श्रीनेमिनाथः प्रणतो न पाण्डवैः ॥८०॥

अंतर्विशुद्धिर्मनसः प्रसाद-श्चारित्रचर्या च बहिर्विशुद्धिः ।
द्विधा विशुद्धं सुभगं जयश्री-र्वृणोत्यहो ! विष्णुमिव द्विधापि ॥८१॥

अः सत्त्वमुक्तं र इतो रजो हं[२]- स्तमो घखं मूर्ध्नि परात्मधाम ।
इत्यक्षयं पञ्चदशप्रभेदा अर्हं समाश्रित्य न केऽत्र सिद्धाः ? ॥८२॥

कलाः कलाकेलिकलङ्ककन्दली-कुद्दालकल्पाः कलिकालरात्रयः ।
सतां यशोभद्रमुनीशितुः कथा-प्रथा यशोभद्रशतप्रदायकाः ॥८३॥

कः कलङ्कविकलोऽजनि लोके, कः कलानिधिरभूद् गुणगौरः ।
कः खलेषु पतितः पतितो न, कः खिलं[३] ऋषिपथं श्रयति स्म ॥८४॥

कः पुरन्ध्रिभिरलाभि न रन्ध्रं, तृष्णया भण न कः परिभूतः ।
कः फणी वनकुटुम्बकरण्डा-न्तर्गतः फलमवाप दुरन्तम् ॥८५॥

कः प्रजेश-शिव-बुद्ध-बिडौजः-केशवादिकगणोऽपि न जिग्ये ।
ऊर्मिभिर्भवसमुद्रभवाभि- स्तं विनाऽवनितले जिनमेकम् ॥८६॥

खलैः कषायैर्गलहस्तितात्मा, स शूलपाणिर्नरकान्धकूपे ।
पतन् महावीरजिनेश्वरेण, संरक्षितोऽकारणवत्सलेन ॥८७॥

---

१. अविनयः ॥
२. चन्द्र ॥
३. समस्तं ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गता न के वैषयिकैः सुखैर्विषै-ग्लार्नि परां द्वादशचक्रवर्तिवत् ।
महाम्बुवाहस्तनितैरिवाऽध्वगाः, पारीन्द्रनादैरिव गन्धसिन्धुराः ॥८८॥
घरट्टवृत्तोऽविरतिस्त्रिया[1] यो, निरन्तरां भ्रान्तिमवापितोऽङ्गी ।
गुणान् कणान् हन्त पिनष्टि दुष्टः, स पुण्डरीकानुजवद् विनष्टः ॥८९॥
ङ इव प्रकृतिवक्रः प्राकृतेऽपि प्रतिष्ठां
न भजति ङवते वा नाऽस्य बालोऽपि भद्रम् ।
तदिह सरलतायां विश्वतो वल्लभायां
मतिमुपचिनु मत्वा नागचन्द्रेतिवृत्तम् ॥९०॥
चतुरचित्तचमत्कृतिकारिणी, चरणचर्य्यतमाऽत्र चराचरे ।
चतुरचारु चिराय चिलातिका-तनयचिन्मयताऽचललोचना ॥९१॥
छलयिता श्रुतकेवलिना मयि, स्खलयिता महतां मरुतामपि ।
दृढप्रहारि महामुनिना भवो, विदलितः सकलोऽपि कलावता ॥९२॥
जपतपःक्षपणैः कृपणैरलं, [2]रल ! विचारय हारय मा रसम् ।
समतया मतया समयं नय-न्नियतमेष्यति माषतुषत्विषम् ॥९३॥
जलानिलस्त्रीपरिवर्जकानां, जगत्त्रयीपावनदर्शनानाम् ।
जडत्ववक्रत्वमुचां मुनीनां, जयातिरेकाय कृता कथाऽपि ॥९४॥
झटिति शैशवतोऽपि शिवं कुरु क्व रुषिते शमये शमनिष्ठता ।
तदतिमुक्तकमौक्तिकलक्षणं न च दधेः श्रवसो किमु भूषणम् ॥९५॥
ञवदनार्जवशालिनि पृष्टतः कुपुरुषे पुरतः सरलेऽपि हि ।
मतमुपेक्षणमुक्तमिहागमे न यदभव्यगुरोरपि गौरवम् ॥९६॥
टलति कनकशैलो विश्वमध्यस्थताया-
स्त्रिभुवनगुरुलीलाक्षोभितात्मा कदापि ।
चलति न तु मुनीनां स्कन्दकाचार्यशिष्य-
स्थिरचरितधराणामन्तरात्मा क्षयेऽपि ॥९७॥
ठगमोदकैः प्रियतमावचनै-र्बडिशामिषैर्विविधवित्तभरैः ।
ऋषभाङ्गजस्य ऋषिभानुमतो नमति स्म नाम न मतिः स्वमतात् ॥९८॥

---

१. घरट्टवत् भ्रमितः ॥ २. मूर्खः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डमरुकरवरौद्रैः शैवशाक्यादिवाक्यैः, कथमिव तव तावत् क्षीयतां मोहनिद्रा ।
अतिमधुरगभीरं पुष्पचूलेव याव-ज्जिनवचनमुदारं जीव !
न श्रोष्यति त्वम् ॥९९॥

ढक्का महानन्दपुरप्रयाणे क्ष्वेडा महामोहगजप्रहाणे ।
दिव्यो ध्वनिः कैश्चन विश्वभर्तु-र्निशम्यते श्रीमरुदेवयेव ॥१००॥

णाकारवद् ये सरलास्त्रिशुद्ध्या, तत्त्वत्रयी तान् वृणुते क्रमात् ते ।
रत्नत्रयाभ्यासहतत्रिवेदा-स्त्रैगुण्यमुक्ते महसि स्फुरन्ति ॥१०१॥

ण इवादौ मध्यं (ध्येऽ)न्ते, तपसा श्रितरेख एष हरिकेशः ।
कैः कैर्न पुरश्चक्रे गीर्वाणैर्ब्राह्मणैः श्रमणैः ॥१०२॥

तथ्यमेकममलं गृहाश्रमे, पात्रदानसुकृतं सखे ! श्रय ।
शालिभद्र-कृतपुण्य-चन्दना-वीरभद्रयशसे स्पृहाऽस्ति चेत् ॥१०३॥

थटे[1] प्रतीतिः प्रतिभाप्रतिष्ठा प्रभाप्रभावप्रभुताप्रियाणाम् ।
शीलेव हीलां न सुधीर्विधत्ते, श्रुत्वा यशश्चेटकनन्दिनीनाम् ॥१०४॥

दक्षत्वदाक्षिण्यदयादमाङ्कुरो-त्करादिकन्दं शिवसौख्यलग्नकम् ।
रजस्तमोमुक्तमनन्तसत्त्वभृत् तपस्तताना ऽऽर्यमहागिरिर्गुरुः ॥१०५॥

धन्या इलातीसुतवद्विधिज्ञा, विचित्रदुःखार्पणशत्रुभूतम् ।
मात्राधिकेनेव महत्त्वशक्त्या भवं हि भावेन पराभवन्ति ॥१०६॥

न हारहूरा[2] हृदयं हरन्ते न शर्करा भाति च शर्कराभा ।
सुधा मुधा चेन्न ममाक्षवर्गः सम्यग् निपीतार्द्रकुमारकीर्तेः ॥१०७॥

परापवादाश्रवणं परस्त्रिया-मदर्शनं श्रोत्रदृशोः शुचित्वकृत् ।
पैशून्यमुक्ती रसनांचलस्य वै अस्तेयमप्राणिवधोऽङ्घ्रिहस्तयोः ॥१०८॥

पराङ्गनालिङ्गनवर्जनं तनोः शौचं सतां तत्त्वविदो विदुः सदा ।
एवं शुचिः सत्पुरुषस्त्रिमार्गपाप्यभीष्यते स्वात्मविशुद्धिहेतवे ॥१०९॥

पश्य पश्य पवनैरिवोद्धतैः पर्वता इव नहि प्रकम्पिताः ।
वज्रकर्ण-कपिराज-कार्त्तिका-स्तत्त्वनिर्णयविशुद्धबुद्धयः ॥११०॥

---

१. लोकसमुदाय ॥ २. द्राक्षा ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फल्गु वल्गु जनताप्रतारणं, वेदवाक्यमपवादकारणम् ।
तं मरुन्तमखभञ्जनं[1] विना, को निवारयति दुःषमारके ॥१११॥

बध्यतेऽविकलधीः सुधीस्तु नो, वाङ्मनस्तनुविकल्पनागुणैः ।
उत्थितेन भवनादि दह्यते, वह्निना न गगनं कदाचन ॥११२॥

भद्रमस्तु भवभीतिभेदिनां, श्रीयुगादिजिन-शान्ति-नेमिनाम् ।
ये निरर्गलभवोत्सवोर्मिभिः, सङ्गता अपि चिरं न रङ्गिताः ॥११३॥

मणिपतेरसमैः सुमनःपते-रुपचिता बत ये शमसौरभैः ।
न कलिकालनिबन्धविगन्धयो, विधुरयन्ति कदाचन तानहो ! ॥११४॥

मत्वा क्षणं यदि जिनस्य तदाऽकरिष्यन्
पादाः प्रसादममृतोर्मिकिरा गिरा न ।
हा हन्त तत्कथममी फणिशूलपाणि-
मुख्यास्तमोमयगरज्वरिणोऽभविष्यन् ॥११५॥

यस्तनोत्यतनुशुद्धिमात्मनो, बन्धुदत्तचरितामृतार्णवे ।
रागनागगरलोर्मयो न तं, मूर्च्छयन्ति विषमक्रमा अपि ॥११६॥

यम-नियमा-ऽऽसन-प्राणा-यम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यानम् ।
सुसमाधिरष्टधैवं, योगः शिवलक्ष्मियोगकरः ॥११७॥

रजस्तमःसत्त्वमयाशयानां, चिरक्षणस्थास्नुगुणप्रमाणे ।
रतिः क्रमात् कीर्तिशरीरधर्मे, वैगुण्यभाजां तु शिवे मुनीनाम् ॥११८॥

रत्नश्रवः-सम्भव-पद्मनाभ-नारायणानां चरितानि तानि ।
श्रुतानि केषां ददते न शान्ति, शीतावदातोन्नतिबन्धुराणि ॥११९॥

लक्ष्ये विशन्त्यविरतेः पुरुषाधमा ये
ते प्राप्नुवन्ति जिनरक्षितवद् विपत्तिम् ।
श्रीवर्द्धमानचरणाम्बुजचञ्चरीका
अन्ये तु यान्ति जिनपालितवन्महत्त्वम् ॥१२०॥

वर्द्धिष्णुमैत्री-मुदिता-ऽनुकम्पा-माध्यस्थ्यमेध्यासमताप्रणीतम्[2] ।
वक्षःस्थले कौस्तुभवच्चकास्ति, समत्वमेकं पुरुषोत्तमानाम् ॥१२१॥

---

१. प्रभवं विना (?); 'रावणं विना' इति स्यात् ॥ २. सहितं ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शमं शरीरे शतधा दधानः, शरण्यमेकं जिनमेव जानन् ।
शतक्रतोरप्यविकम्प्यचित्तः, शक्नोति शान्ताय पदाय गन्तुम् ॥१२२॥

षड्दृष्टिदृष्टान्तविदश्चतुर्थ-षष्ठादिनिष्ठारसिकात्मवृत्तेः ।
षड्भेदजीवावननिष्ठितस्य, षष्ठी यतेर्हस्तगतेव लेश्या ॥१२३॥

सत्यं समाधिः समता समर्थता, सहिष्णुता सत्त्वकला सशूकता ।
सम्यक्त्वसङ्गः सरलत्वसभ्यते, सदा सतां सद्गतिसाक्षिणो गुणाः ॥१२४॥

हर्म्याणि रम्याणि रमाश्च रामा, हर्म्यातिकाम्याभरणाभिरामाः ।
भवे भवे भाग्यभृतां भवेयुः, सुदुर्लभः किन्तु जिनेन्द्रधर्मः ॥१२५॥

हंसः सतां लसति सद्गुरुभानुबोध्ये
योगाम्बुजे गृहि-यतिव्रजबीजकोशे ।
सम्यक्त्वनालजुषि शुद्धयमादिपत्रे,
पुण्यामृतोपचितमानसगर्भजाते ॥१२६॥

लक्ष्यैकभाग् द्वादशभावनारसे
लयं श्रयन् ध्यानचतुष्कपूरणे ।
लघुत्वमाज्ञाविचयादिचिन्तया
लब्ध्वोद्धर्वलोकान्तमुपैति चेतनः ॥१२७॥

क्षमामृदुत्वार्जवसत्यसंयम-
त्यागास्तयोऽकिञ्चनता सशौचता ।
ब्रह्मेति धर्मो दशधा जिनोदितः
स्याद् भूर्भुवःस्वःसुखसिद्धिदायकः ॥१२८॥

मङ्गलं निरवधि स्थिरा **महा**-
श्रीः परं शरणमुत्तमं महः ।
सिद्धसेनहृदयाधिदैवतं
निर्मलं जयति जैनशासनम् ॥१२९॥

इत्याचार्य श्रीसिद्धसेनोपज्ञं श्रीसिद्धमातृकाभिधं
धर्म्मप्रकरणं समासमिति शुभं भवतु ॥ श्रीरस्तु ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org